ISSN: 2395-7852

# International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 5, September 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

# प्रेमचंद के उपन्यासो में नारी चेतना के स्वर

डॉ. भुवनेश कुमार परिहार

सह-आचार्य, हिन्दी,राजकीय महाविद्यालय, सांभर लेक, जयपुर, राजस्थान

सार

हिंदी साहित्य जगत में मुंशी प्रेमचंद का पर्दापण एक विशेष महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। प्रेमचंद जी एक जनवादी तथा प्रगतिशील लेखक थे। मुंशी प्रेमचंद जी एक ऐसे जनवादी चेतना से सम्पृक्त लेखक थे जिन्होंने 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कार्यरत होते हुए भी आधुनिक समाज के 21 वीं शताब्दी तक की समस्याओं को अपने साहित्य में उस दौर में लिख दिया था। अगर हम ये कहे कि आज से करीब 100 वर्ष पहले ही प्रेमचंद जी ने महाभारत के संजय की भांति अपनी दूर दृष्टि से आने वाले कल को देख लिया था, तो यह कथन कतई गलत नहीं होगा। जिस प्रकार से इन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों में घटनाओं की रचना की थी वह आज की सच्चाई को बयां करती है। चाहे वह स्थिति एक किसान की हो, दलित की हो या फिर नारी की ही क्यूँ न हो, इनकी रचनाएँ समाज का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती हैं।

## परिचय

प्रेमचंद के नारी पात्रों में शहरीय वर्ग, गाँव का किसान समुदाय और अभिजात्य वर्ग के दर्शन होते हैं। अतः इनके व्यवहार, आचरण, प्रतिक्रियाओं पर सामंती आर्थिक व्यवस्था का पूरा प्रभाव दिखता है। उनकी कृतियों में सामाजिक परिस्थितियाँ सत्यता लिए हुये ज्यों की त्यों नज़र आती है, इनकी लेखनी में कहीं कोई काल्पनिकता का आभास नहीं होता। इनकी रचनाओं में असफलताएँ भी नजर आती है और सफलताओं द्वारा नई दिशा भी दिखाई देती है। प्रेमचंद जी के नारी पात्रों में हम एक माँ, पत्नी, प्रेमिका, बहन, सौतेली माँ, दोस्त, बदचलन, वेश्या, भाभी, ननंद, समाज सुधारक, देशप्रेमी, परिचारिका, आश्रिता आदि कई रिश्ते भी दिखाई देते हैं। यह भी पढ़ें- "मैंने फाउंटेनपेन उसके हाथ में रख दिया, उसे जैसे ज़माने की दौलत मिल गई" प्रेमचंद जी एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने न सिर्फ नारी की दयनीय स्थिति को अपनी रचनाओं में उद्धृत किया बल्की नारी को पुरुष के समान अधिकार की भी बात सामने रखी| इनकी रचनाओं में नारी पात्र दीन दुखी तो है पर वह सशक्त है; वह अपने साथ हो रहे अत्याचारों के खिलाफ लड़ने में सक्षम भी है, तभी तो वे अपने कालजयी उपन्यास में उस दौर में लिखते हैं जिसकी कल्पना उस दौर में करना भी अपराध था - "जब पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वो महात्मा बन जाता है और अगर नारी में पुरुष के गुण आ जाये तो वो कुलटा बन जाती है"। 'गोदान' में उद्धृत ये पंक्तियां प्रेमचंद का नारी को देखने का संपूर्ण नज़रिया बयां करती हैं। आज हमारा पूरा भारतीय समाज नारी को सशक्त बनाने के लिये जिस क्रांतिकारी दौर से गुज़र रहा है उस नारी को प्रेमचंद बहुत पहले ही सशक्त साबित कर चुके थे | प्रेमचंद के साहित्य की स्त्री सशक्त है वह 'कर्मभूमि' में उतरकर पुरुष के कांधे से कंधा मिलाकर देश की आजादी के लिए संघर्ष करती है, उसे 'गबन' कर लाये पैसों से अपने पति की भेंट में मिला चंद्रहार स्वीकृत नहीं है, वो एक गरीब किसान के दुख-दर्द की सहभागी बन अपना पतिव्रता धर्म भी निभाती है, वो 'बड़े घर की बेटी' भी है और उस सारे पुरुष वर्चस्व वाले परिवार में मानो अकेली मानवीय गुणों से संयुक्त है, वो मजबुरियों में पड़े अपने परिवार के लिये समाज के सामंत वर्ग से बिना डरे 'ठाकुर के कुएं' पे जाकर तत्कालिक व्यवस्था को चुनौती देती है और कभी एक माँ बनकर अपने बच्चे के लिये खुद की जान भी लुटा देती है। मुंशी प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में जिस परिदृश्य को चित्रित किया है वो कतई नारी के अनुकूल नहीं रहा है और नारी उस काल में समाज के पिछले पन्ने का ही प्रतिनिधित्व करने वाली रहा करती थी, लेकिन इसके बावजूद मुंशीजी के साहित्य में नारी चरित्र उभरकर सामने आया है और इस साहित्य को देखकर लगता है कि मानों नारी समाज की मुख्यधारा का प्रतिनिधित्व कर रही है और पुरुष हासिये पर फेंक दिये गये हैं। प्रेमचंद जी के दो दर्जन से अधिक उपन्यासों में से निर्मला, मंगलसूत्र, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा, तो ऐसे उपन्यास हैं जो पूर्णरूपेण नारी चरित्रों पर ही केन्द्रित रहे हैं तो अन्य भी जो उपन्यास रहे हैं उनमें भी स्त्री चरित्र को पुरुष के समानांतर ही प्रस्तुत किया है। 1,2]प्रेमचंद की सैंकड़ो कहानियों में से जो कुछेक अति प्रसिद्ध कथाएँ रही हैं वो भी अपने प्रमुख नारी चरित्रों के कारण जानी जाती है जिनमें से ठाकुर का कुआँ, पूस की रात, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, दूध का दाम, कफ़न इत्यादि अति प्रसिद्ध हैं। उनके साहित्य में प्रस्तुत नारी छवि को देख ऐसा जान पड़ता है कि मानों समाज में मानवोचित गुणों की वाहक मात्र नारी ही है और जो पुरुष मानवीय गुणों से संपन्न हैं, वे भी नारी के प्रभाव में आकर ही मानवीयता से संपन्न हुए हैं। यह भी पढ़ें- कथाकार प्रेमचंद पर विशेष: 90 साल पुराने ख़त, लगता है कल लिखे गए प्रेमचंद अपनी रचनाओं में महिला चरित्रों को कर्म, शक्ति और साहस के क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष प्रस्तुत करते हैं पर महिला की नैसर्गिक अस्मिता, गरिमा और कोमलता को वो क्षीण नहीं होने देते। प्रेमचंद का साहित्य उन तमाम आधुनिक महिला सशक्तिकरण के चिंतको के लिये उदाहरण प्रस्तुत करता हैं जो नारी को सशक्त बनाने के लिए उसके चारित्रिक पतन की पैरवी करते हैं और उसकी अस्मिता के भौंडे प्रदर्शन को नारी शक्ति का प्रतीक मानते हैं। इज्जत,

शारीरिक सुंदरता, शारीरिक निर्बलता एवं उसके दैवीय गुणों को महिमामंडित कर नारी को बल पूर्वक घर में बंद रहने पर मजबूर किया गया है। यही कारण है कि परिवार में पुरुष वर्ग कब्जा जमाये बैठे हैं। वहीं स्त्री अपने पारिवारिक स्थान से गिरते हुये शीघ्र ही गुलाम बना दी जाती है । यह एक दुखद बात है कि जिस घर को एक नारी इतनी मेहनत और लगन से बनाती और चलाती है उसके त्याग और समर्पण की परवाह किसी को नहीं होती पुरुष समाज जब चाहे उसे बहार निकाल सकता है। भले सरकार और हमारी शिक्षा प्रणाली आज महिला को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रही है पर पुरुष मानसिकता को बदलने में अभी तक सब नाकाम ही हैं| इस पुरुष वर्चस्व प्रधान समाज में, घर के बाहर की बात तो दूर घर-परिवार के अंदर ही महिलाएं आज भी इस पुरुष प्रधान मानसिकता का शिकार होती हैं जहां उसे अपनी पसंद, अपनी इच्छाओं, जिजीविषाओं का हर पल गला घोंटना पड़ता है। इसी पुरुष मानसिकता की देन है कई छुपे हुए गहन अपराध, भ्रुणहत्या, दहेज, महिला उत्पीड़न, घरेलू हिंसा आदि। आज के वक्त में जब जनता दामिनी, गुड़िया और निर्भया पर हुए अन्याय का बदला लेने के लिये सड़को पर है इस दौर में प्रेमचंद का नारी के प्रति दृष्टिकोण सर्वाधिक प्रासंगिक बन पड़ता है।[3,4]

स्त्री -विमर्श में प्रेमचंद का योगदान नींव की ईंट की तरह है।जो समाज निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाता है जिसके बिना समाज अधूरा है।वह पुरुष को आधार देती है,स्पर्धा नहीं करती। यह वह स्त्री है जो परिवार, समाज तथा राष्ट्र का निर्माण करती है। प्रेमचंद जी के नारी पात्रों ने शारीरिक सौंदर्य को महत्व न देकर हमेशा संघर्ष, परिश्रम, नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य और सच्चाई को महत्व दिया गया है।२१वीं सदी में जहां एक ओर नारी आदर्शों में भौतिकता के प्रति आकर्षित हो रही ऊं, वहां ऐसे समय में प्रेमचंद के नारी पात्र एक सुखद एहसास दिलाते हैं।ये नारी पात्र पाश्चात्य सभ्यता की ओर आकर्षित भारतीय नारी के समक्ष एक चुनौती बनकर खड़ी हो जाती हैं। अतः नारी में अधिकार सजगता एवं स्वयं निर्णय लेने की क्षमता की पहल मुंशी प्रेमचंद ने ही की.

एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु जितने भी मुक्ति संघर्ष हुए हैं उनमें से एक है 'नारी चिंतन'।समाज निर्माण में स्त्री की भूमिका मुख्य होती है।धर्म ग्रंथों में स्त्री को संसार की जननी कहा गया है। आज भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी पदार्पण कर चुकी है।यही नारी चिंतन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'नारी विमर्श के नए रूप में हमारे समक्ष आ रहा है । इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि नारी पक्ष में लिखा गया साहित्य आज जिस व्यापक रूप में चर्चित हो रहा है उसका प्रारंभ प्रेमचंद काल से ही हो गया था । महिला सशक्तिकरण, महिला दिवस ,महिला दशक आदि ।

स्त्री अधिकारों के मिलने से आज नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठी है।लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो आज भी हमारे सामने ऐसी सामाजिक विसंगतियां हैं जो महिलाओं की गरिमा के अनुकूल नहीं है। देश में ,समाज में , महिलाओं का सशक्तिकरण होना आवश्यक है ।आज साहित्यकारों ने अपने- अपने दृष्टिकोण से विमर्श को रखा है । कहीं दोनों को समान माना गया है ,तो कहीं स्त्री स्वयं को परंपराओं के बंधन से मुक्त कर आधुनिकता की दौड़ में दौड़ रही है ।आज वह इतनी आगे निकल चुकी है कि हर क्षेत्र में अपनी अलग छवि बना ली है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से ही स्त्री आज आर्थिक रूप से निर्भर हो सकी है । मुंशी प्रेमचंद स्त्रियों की शिक्षा का समर्थन करते हैं। उन्हें पता था कि एक शक्ति संपन्न स्त्री ही समाज का सर्वांगीण विकास कर सकती है ।साथ ही साथ नारी के अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होने को सही मानते हैं। यही विचार कथाकार मैत्रेयी पुष्पा के हैं ।उनका कहना है कि- "उच्च शिक्षा व आर्थिक स्वावलंबन स्त्री मुक्ति को सुनिश्चित करता है।"[5,6]

प्रेमचंद जी के कथा साहित्य का अपना स्त्री विमर्श है। अतः आधुनिक स्त्री विमर्श के कुछ तथ्य को हम इनके कथा साहित्य में देख सकते हैं ।वास्तव में स्त्री की अस्मिता तथा समाज व परिवार में सम्मान जनक भूमिका तथा उसके अधिकारों व दायित्वों से संबद्ध आयामों पर विचार व चिन्तन ही स्त्री विमर्श है । भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्रियों की जैविक एवं मानसिक स्थिति को प्रेमचंद जी ने अपनी कथा साहित्य के माध्यम से उजागर किया है ।उनकी रचनाओं में स्त्रियां दयनीय नहीं मिलती त्याग, समर्पण, निष्ठा, नैतिक मूल्य, भावुकता जैसे मानवीय संवेदनाओं के साथ -साथ मन के स्तर पर भी चेतनाशील हैं।यह चेतना उनमें परिवार एवं दांपत्य संबधों से जोड़े रखती है ।यही सबसे बड़ा कारण है कि उनमें संघर्ष करने की कशमकश चलती रहती है ।

मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य उपन्यास जगत को 15 उपन्यास दिए।उनके उपन्यासों में नारी की आदर्श छवि का अंकन हुआ है।दरअसल प्रेमचंद आदर्शवादी कथाकार थे।यही कारण है कि उनके कथा साहित्य में नारी पात्र भी विभिन्न आदर्शों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। 'प्रेमा' उपन्यास की प्रेमा एक आदर्श प्रेमिका है । वह पूर्णा से कहती है, 'यहां भी यही ठान ली है कि चेरी बनूंगी तो उन्हीं की।' वह अमृतराय से बहुत प्रेम करती है।इसके बाद भी वह अपने माता-पिता की इच्छानुसार दाननाथ से विवाह कर लेती है । उपन्यास की नायिका पूर्णा आदर्श भारतीय नारी है।पति की मृत्यु के बाद वह फूल तक का त्याग कर देती है ।

'वरदान 'उपन्यास की सुशीला, माधवी,सुवामा,विरजन आदि नारी चरित्र भी आदर्श नारी चरित्र हैं।सुशीला और विरजन दोनों मां-बेटी

में सेवा भावना कूट-कूटकर भरी है। सुवामा के बीमार होने पर वे दोनों उसकी सेवा में लगी रहती हैं।माधवी का चरित्र भी भारतीय नारी का आदर्श प्रस्तुत करता है ।प्रेमचंद के स्त्री -पात्र मालती तथा उसकी बहनें सरोज एवं वरदा स्त्री विषयक शहरी निर्णय की संकल्पना को चरितार्थ करते हैं।ग्रामीण परिवेश में धनिया सिलिया एवं सोना भी पीछे नहीं है।जमींदार की कन्या मीनाक्षी तो अपने अय्याश पति को हंटर से मारकर दंडित करने में भी नहीं हिचकती।प्रेमचंद का यह अपना विमर्श है। सेवासदन की नायिका सुमन और सगर्वा स्वाभिमानी नारी है।प्रेमाश्रम' की गायत्री सरल,निष्कपट और प्रेममयी नारी है। उसके आदर्श चरित्र के कारण ही उसे सिनेमाघर के भीतर महापुरुष के साथ बैठने में असहजता महसूस होती है ।वह आदर्श और पतिपरायण भारतीय नारी है ।परपुरुष के छू लेने से उसे अपना सतीत्व नष्ट होता दीखता है ।घर आने पर वह पति के चित्र को छाती से लगाए देर तक खड़ी रोती है। वह गरीबों की हमदर्द है और उनका हित चाहती है।[7,8]

इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री एवं पुरुष दोनों के सामंजस्य बिना सृष्टि की उत्पत्ति व उसके रहने की कल्पना भी नही की जा सकती ।दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं न कि विरोधी या प्रतिस्पर्धी। शायद ही किसी अन्य रचनाकार ने समझा हो, इस सत्य को हम नकार नहीं सकते जितना प्रेमचंद ने समझा। 'सती' की नायिका का यह कथन -"मैं जानती हूँ कि मैं मर भी जाती, तो मेरा सिरताज जन्म भर मेरे नाम को रोता रहता।ऐसे ही पुरुषों की स्त्रियां उन पर प्राण देती हैं। 'गोदान' उपन्यास के ग्रामीण पात्र धनिया और होरी तथा शहरी पात्र मि•मेहता और मालती दो विभिन्न विचारधारा के होने बावजूद भी अंत में एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।धनिया के स्वभाव में कर्कशता होने के बावजूद उसमें पति-परायणता, स्पष्टवादिता और निर्भीकता जैसे गुण पाए गए हैं।

वह भारतीय किसान की आदर्श भारतीय पत्नी है।उपन्यास के प्रारंभ में जब होरी रायसाहब के यहां जा रहा होता है, तब वह द्वार पर खड़े होकर एक टक देखती रहती है।उस समय उसकी मनःस्थिति का चित्रण करते हुए उपन्यासकार कहता है, वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभ्यदान दे रही थी।'रंग भूमि ' की सोफिया और विनयसिंह के बीच का संबंध भी इसी प्रकार का है ।स्त्री -पुरुष का संबंध मैत्री का है।ईसाई धर्म की सोफिया विनयसिंह से प्रेम करती है ।।शहरी पात्रों में यह भाव अधिक है ।तत्कालीन परिवेश में स्त्री -पुरुष के इस सूक्ष्म रूप को इतनी ताकत के साथ रखना प्रेमचंद जी के ही वश की बात थी।सिलिया एवं मातादीन विजातीय हैं,किंतु गैरजाति के होने के बाद भी उनके संबंध जातिवाद की अग्नि में नहीं झुलसते ।

प्रेमचंद का स्त्री विमर्श यह भी है कि वह व्रत के बदले व्रत,उपासना के बदले उपासना चाहती है।गोपा का यह कथन, 'स्त्री को जीवन में प्यार न मिले तो उसका मर जाना ही अच्छा है ।' यह कथन आज के स्त्री विमर्श की अवहेलना करता है ।आज के विमर्श की तरह प्रेमचंद का विमर्श सोच भी नही सकता था कि स्त्री को अगर पति का प्यार न मिले तो किसी परपुरुष की ओर जाए क्योंकि संसार में उसके लिए केवल पति ही जानने योग्य विषय नही है बल्कि उसे संसार जानने की भी इच्छा है । प्रेमचंद जी ने स्त्री जागरण का संदेश भी दिया पर उनके विचार में पाश्चात्य उच्छृंखलता नहीं आनी चाहिए ।उन्होंने स्त्री स्वतंत्रता को केवल आत्मस्वावलंबन की आवश्यकता तक माना है।पुरुष प्रधान समाज भले ही 'अलग्योझा' की मूलिया को कहता रहा, "मारे घमंड के धरती पर पांव न रखती थी,आखिर सजा मिल ही गई कि नहीं?

अब घर में कैसे निर्वाह होगा?वह किसके सहारे रहेगी ? " पर इसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं कि वे स्त्री को कभी झुकते अथवा कमजोर देखना नहीं चाहते ।उसमें भी मान -सम्मान है, स्वयं पर विश्वास है ।वे एक ऐसी स्त्री का निर्माण करना चाहते हैं जो समाज में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षरत रहे गोदान के जमींदार की कन्या मीनाक्षी में यही भाव देखने को मिलता है ।मालती पढ़ी-लिखी स्त्री है।प्रगतिशील विचारधारा की स्त्रीहै।पर मीनाक्षी सीधी व मूक स्त्री है।स्त्री -पुरुष में समान भाव को नही मानती,किंतु अपने 'स्व' की रक्षा हेतु अपने अय्याश पति को हंटर से मारकर ऐसे पुरुष प्रधान समाज के शोषित रूप पर प्रहार करती है ।अधिकार की चर्चा आधुनिक स्त्री विमर्श का एक अविभाज्य रूप है ।सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, धार्मिक के साथ -साथ दैहिक तथा मानसिक सारे इसमें आ जाते हैं।प्रेमचंद के काल में इन अधिकारों को स्त्री के परिप्रेक्ष्य में तो सोचा भी नहीं जा सकता क्योंकि न तो स्थितियां और न ही परिवेश अनुकूल था ।[9,10]

परन्तु प्रेमचंद ने इनमें से कई अधिकार जरूरी माने हैं। 'बेटों वाली विधवा ' की दुर्दशा बेशक बेटों के ही कारण हुई हो पर 'फूलमती' की बात सर्वमान्य थी।वे स्त्री के सक्षम होने में विश्वास रखते थे पति के होने या न होने पर भी उसके आत्मविश्वास में कोई कमी नहीं आयी।वे स्त्री मन के पारखी थे। उन्होंने बेटा -बेटी में कोई फर्क नही माना वे जानते थे कि घरों में फूट इसी कारण से पड़ती है। 'बेटों वाली विधवा ' की फूलमती ने जिद्द पकड़ ली और कहा -"विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, चाहे खर्च पांच हजार हों या दस हजार ।मेरे पति की कमाई है ।मैने मर -मर कर जोड़ा है। अपनी इच्छा से ही खर्च करूंगी ।तुम्हीं ने मेरी कोख से जन्म नही लिया,कुमुद भी उसी कोख से जन्मी है ।मेरी आँखों में तुम सब समान हो।"

पुरानी परंपरानुसार चलते आ रहे बेटा -बेटी के भेद तोड़कर समाज में स्त्री जाति को उसका स्थान व अधिकार दिलाने में प्रेमचंद पीछे नही रहे।उनकी दृष्टि में स्त्री समाज का निर्माण करने के साथ-साथ संस्कार देती है, पोषण करती है कभी-कभी विद्रोह भी कर उठती है ।वह टूट कर फिर उठती है ।वह पुरुष मन को जानने वाली है।'कफ़न' के माधव की चिंता का कारण भी यही है कि वह स्वर्ग में जाकर बुधिया को क्या जवाब देगा ? क्योंकि पत्नी तो वह उसकी थी । मुंशी प्रेमचंद विधवा विवाह के भी समर्थक रहे हैं।भारतीय समाज उसे सदैव सामाजिक, नैतिक तथा दैहिक रूप से हाशिये पर डालता आ रहा है ।यहां नारी विमर्श यह मानता है कि, नारी भी एक इनसान है,उसे भी हर सुख चाहिए अर्थात् उनका विमर्श देह का विमर्श भले ही न हो पर असमय आए हुए वैधव्य के बोझ को सहती हुई स्त्री अपने जीवन को निरर्थक न समझे।विधवा स्त्री को सत्ता देकर भी उसकी व्यथा को कम करने का प्रयास लेखक ने 'स्वामिनी' की रामप्यारी के संदर्भ में किया है।इस रूप में प्रेमचंद का स्त्री -विमर्श अत्यंत सराहनीय है ।

कायाकल्प की मनोरमा सेवाभावना युक्त स्पष्टवादी नारी पात्र है।उसके गुणों के विषय में बताते हुए यशोदानंदन चक्रधर से कहते हैं,'उसे कपड़े का शौक नहीं, गहने का शौक नहीं, अपनी हैसियत को बढाकर दिखाने की धुन नहीं।सेवा कार्य में हमेंशा आपसे एक कदम आगे रहेगी।' कायाकल्प (पृष्ठ 105)। वह उदार नारी पात्र है । 'निर्मला' उपन्यास निर्मला की वेदना और जीवन संघर्ष की कहानी है ।निर्मला का आदर्श त्याग, प्रेम, सहनशीलता और पतिपरायणता से परिपूर्ण है ।वह अपने पिता के उम्र के पति के साथ जीवन में यथा संभव संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है।पति के आरोपों को सहन करती है और अपने पुत्रों से असीम अनुराग रखती है ।वह अत्यधिक सहनशील प्रवृत्ति की नारी है। रुक्मणी के तानों और तोताराम के संदेह बाणों को वह आराम से सह लेती है ।[11,12]

इतना ही नही वह एक आदर्श सहेली भी है।सुधा उसके लिए कहती हैः-''निर्मला ने मेरी बड़ी मदद की है ।मैं तो एकाध झपकी ले भी लेती थी, पर उसकी आँखे नहीं झपकी ।रात- रात भर बैठी या टहलती रहती थी ।उसके एहसान कभी न भूलूंगी" (निर्मला -पृष्ठ 091) इस उपन्यास की कल्याणी पुत्र वत्सला नारी है बच्चों के प्रति उसकी चिंता वास्तविकता लिए हुए है --''बच्चों को किस प्रकार छोडकर चली जाऊः? मेरे इन लालों को कौन पालेगा?ये किसके होकर रहेंगे? कौन इन्हे प्रातः काल दूध और हलवा खिलायेगा ,कौन इनकी नींद सोयेगा और जागेगा?'' निर्मला की तरह सुधा भी एक पतिव्रता नारी है ।वह डॉक्टर साहब के संग अपना पति धर्म निभाती है।इस उपन्यास की कृष्णा भी आदर्श भगिनी है। नारी मनोविज्ञान की समझ प्रेमचंद में अपने समय से बहुत आगे की है।उस समय देश की स्थिति भी अच्छी नहीं थी।आज नारियों की प्रगति एवं परिवर्तन जिस ऊंचाई तक पहुंचा है वहां तक पहुंचने की पहल प्रेमचंद जी के नारी पात्रों में मिलती है। शिक्षित ही नहीं अशिक्षित नारियों में भी सूझ-बूझ, सही सोच मिलती है। 'गोदान' की अशिक्षित स्त्री चाहे धनिया, सिलिया,झुनिया हो या शिक्षित मालती, गोविंदी हो, 'रंगभूमि' की शिक्षित सोफिया हो या अशिक्षित सुभागी।

विचार-विमर्श

यह संभव ही नहीं कि प्रेमचन्द जैसा लेखक अपनी रचनाओं में तथा अपने चिंतन में स्त्री संबंधी विचार, मंतव्य तथा दृष्टिकोण को उजागर न करे। प्रेमचन्द का जीवन–काल (1880-1936) स्वतंत्रता-प्राप्ति के विभिन्न तबक़ों का वह दौर था जब हर संवेदनशील रचनाकार के लिए हिन्दी, नारी तथा स्वतंत्रता की बात करना अनिवार्य-सा था। ऐसा करना उस युग की मांग थी। यह तथ्य सर्व विदित है कि नवजागरण काल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानड़े, महर्षि कर्वे, दयानंद सरस्वती आदि के नाम स्त्रियों के अन्दर तथा स्त्रियों के प्रति जागृति लाने तथा फैलाने के क्षेत्र में प्राथमिक माने जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि इन सामाजिक विचारकों ने स्त्री-जागृति मुहिम की नींव डाली थी। उपरोक्त प्राथमिक विचारकों के लगभग सौ वर्ष बाद प्रेमचन्द का आगमन एक लेखक के रूप में होता है। प्रेमचन्द और गांधी भारतीय समाज तथा राजनीति में एक बिन्दु पर साथ-साथ सक्रिय होते दिखाई पड़ते है। गांधी जी का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः राजनीतिक होने के कारण उनका प्रभाव-क्षेत्र अधिक तात्कालिक एवं व्यापक था। प्रश्न यह है कि स्त्री-संबंधी चिंतन विषयक प्रेमचन्द का क्या नज़रिया था ? साथ ही अपने विचारों को उन्होंने अपने वास्तविक जीवन में किस हद तक अपनाया, अपना सके, उसे कहाँ तक निभाव कर सके।
प्रेमचन्द के नारी विमर्श पर यह मेरा तीसरा आलेख है। पहले दोनों आलेखों में मैंने उनके उपन्यासों को आधार बना कर, उनमें निहित उनके स्त्री- चिंतन को समझने का प्रयत्न किया था। इस आलेख में मैंने उनके संपादकीयों को केन्द्र में रखा है तथा उनमें व्यक्त विचारों को मुख्यतः शिवरानी देवी की पुस्तक प्रेमचन्द- घर में के साथ पढ़ने की चेष्टा की है। कुछ निष्कर्षों तक भी पहुंचने का प्रयास किया है। अमृत राय की प्रेमचन्द कलम का सिपाही को भी इसी संदर्भ में देखा है। इस प्रकार के पाठ से अनेक प्रश्न उठ सकते हैं- मसलन किसी एक या दो किताबों के आधार पर किसी लेखक के विचार एवं व्यवहार को जाँचना कितना योग्य हो सकता है ? हो सकता है कि अध्ययन से निकले निष्कर्ष पूर्णतः निष्पक्ष न भी हों – परन्तु फिर भी मेरा यह मानना है कि प्रेमचन्द के स्त्री-चिंतन को जांचना हो तो सबसे विश्वसनीय पाठ शिवरानी देवी का ही हो सकता है। अमृत राय की पुस्तक में उन मुद्दों के संदर्भ में भी मन्तव्य मिलते हैं, जहाँ शिवरानी देवी मौन हैं।[13,14]
हंस तथा जागरण के कई संपादकीयों में प्रेमचन्द ने महिला-आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में नारी के अधिकारों की पैरवी की है। उन दिनों

विश्व में तथा भारत में चल रहे महिला-आंदोलन की गतिविधियों पर प्रेमचन्द की बड़ी पैनी नज़र थी। उन दिनों शारदा-ऐक्ट(1929) पर विचार चल रहा था। बाल-विवाह, विधवा- अधिकार , सती-प्रथा आदि से जुड़ा यह कानून हरि विलास शारदा के प्रयत्नों से अस्तित्व में आया। आगे चलकर इसमें कई परिवर्तन आए और फिर वह समाप्त भी हो गया, किन्तु तब वह एक्ट महिलाओं का एकमात्र तारणहार समान था।

प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में तो नारी के विविध रूपों एवं स्थितियों के अनेक पहलू उजागर हुए हैं। असल में स्त्री की करुण दशा से उसे मुक्ति दिलवाते वैचारिक एवं सामाजिक प्रयासों का आरंभ तो, जैसे कहा जा चुका है, राजा राममोहन राय से हो ही चुका था। वास्तविक सेवा-सदनों तथा विधवा- आश्रमों की स्थापना भी हो चुकी थी। उसके बाद लिखा भारतीय साहित्य कहीं न कहीं उन बातों को अपने साहित्य में स्थान देता रहा था । प्रेमचन्द का प्रयास भी उसी परंपरा की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। संपादकीयों में भी वही नज़रिया इस बात की पुष्टि करता है कि प्रेमचन्द जन-संचार माध्यमों के द्वारा भी वही stand ले रहें हैं जो रचनात्मक साहित्य में लेते रहे हैं । नारी-विषयक उनके सम्पादकीय में प्रकट उनके विचार उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति से मेल खाते दिखते हैं- अर्थात् कहीं कोई फांक नहीं है। अलबत्ता, इस बात की पूरी तरह से पड़ताल करने की भी आवश्यकता है कि उनके वास्तविक जीवन के साथ उनके वैचारिक और सर्जनात्मक चिन्तन कहाँ तक जोड़ कर देखा जाना उचित है और देखने पर क्या परिणाम निकलते हैं।

अपने संपादकीयों में प्रेमचन्द उन स्त्रियों के पक्ष में खड़े दिखते हैं जो वास्तविक रूप में अभावग्रस्त या शोषित है। जो अनपढ़, शोषित आदि है, उनकी बेहतर स्थिति के लिए वे प्रयत्नशील दिखते हैं, किन्तु जो वहाँ पहुंच चुकी हैं उनके प्रति प्रेमचन्द के पास अतिरिक्त अनुकंपा नहीं है। अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने वाली स्त्रियों के प्रति, या वे, जिनके पास किसी भी तरह की सत्ता है, चाहे वह रचनात्मक क्यों न हो, उनके प्रति प्रेमचन्द बहुत सदय नहीं दिखते।(प्रेमचन्द के इस रवैये को आजकल के आरक्षण मुद्दे के संदर्भ में देखा जाए तो मालूम होगा कि समान या लगभग समान स्तर प्राप्त कर लेने पर शोषित समाज के प्रति समान भूमिका पर ही निर्णय लिया जाना चाहिए, ऐसा आज एक पक्ष का मत उभरता दिखाई पड़ रहा है। प्रेमचन्द कहीं ऐसा मानते होंगे कि बौद्धिक तथा कला के क्षेत्रों में बराबरी की बात होनी चाहिए, वहाँ पक्षपात की बात नहीं होनी चाहिए, वहाँ पक्षपात या विशेषाधिकार के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द दलितों के पक्षधर तो थे परन्तु दलितों की राजनीति से उनका कोई मतलब नहीं था। अर्थात दलित-चेतना एवं नारी-चेतना दोनों के वे पक्षधर थे परन्तु दोनों के वादियों के वे पक्षधर नहीं थे।) पश्चिम के नारी–आंदोलन संबंधी दृष्टिकोण के प्रति प्रेमचन्द बहुत सहमत न भी हों, परन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों के अधिकारों के लिए उन्होंने बहुत लिखा इसमें दो-राय नहीं हो सकती । जहाँ तक केवल विचार प्रकट करने हों, कड़े से कड़ा और कठोर से कठोर विचार प्रेमचन्द ने बेलौस एवं निर्भीकता से प्रकट किया है किन्तु जहाँ वह विचार उनसे सीधे टकराता दिखता है, वहाँ कई बार प्रेमचन्द ने एक अलग तरह का stand भी लिया है। इस संदर्भ में दो संपादकीयों का उल्लेख करना आवश्यक होगा – क्या कविता नारियों का ही क्षेत्र है में उन्होंने सुभद्राकुमारी चौहान के इस मन्तव्य का विरोध किया कि महिलाएँ चूँकि अधिक भावना शील होती हैं अतः बेहतर कविताएँ लिखती हैं।(1) विरोध का मुद्दा उठाते हुए प्रेमचन्द यह गिनाने की कोशिश करने लगते हैं कि कितनी कम स्त्रियों ने वास्तव में अब तक(1933 तक) लिखा है। प्रेमचन्द जैसे रचनाकार से यह कतई अपेक्षित नहीं हो सकता। भारतीय समाज से जो रचनाकार इतना परिचित हो वह क्यों सुभद्राकुमारी के इस वक्तव्य पर इस तरह असंतुलित हो उठे ? यहाँ किसी तरह की प्रतिस्पर्धा का तो कोई प्रश्न नहीं था ? फिर ?
उसी तरह दिल्ली से प्रकाशित होने वाली पत्रिका रिसाला में एक मुस्लिम महिला के इस मंतव्य पर कि हिन्दुओं की तुलना में मुस्लिम कम संख्या में शिक्षित हैं। और तभी ऊँचे ओहदों पर भी हिन्दू ज़्यादा है , प्रेमचन्द जिस तरह प्रतिक्रियायित होते हैं, आश्चर्य लगता है। इस सम्पादकीय का शीर्षक है सांप्रदायिकता का ज़हर महिलाओं में । जागरण मार्च 1934 में छपे इस संपादकीय में प्रेमचन्द उस महिला का विरोध करते हुए ख़ुद सांप्रदायिक होते दिखाई पड़ते हैं –

देवीजी को यह भ्रम कदाचित् सांप्रदायिक पत्रों के पढ़ने से हो गया। मुसलमान हिन्दुओं से ज़्यादा शिक्षित हैं। ( अगर बाल की खाल निकालना हो तो कहा जा सकता है कि यहाँ इस महिला ने शिक्षित कम- ज़्यादा होने का मुद्दा नहीं उठाया है, बल्कि संख्या के कम-ज़्यादा होने की बात उठाई है- बहरहाल) वे आगे कहते हैं कि सरकारी ओहदों पर भी मुसलमान कसरत से हैं, हिन्दुओं से कहीं ज़्यादा। पुलिस तथा माल में एक तरह से उन्हीं का साम्राज्य है। आमदनी के सारे विभागों पर उन्हीं का कब्जा है। हाँ, डाकख़ाना या क्लर्की जैसे रुखे-सूखे विभागों में हिन्दू ज़्यादा हैं इसीलिए मुसलमानों ने इधर ध्यान न दिया क्योंकि .यहाँ सूखा वेतन था और काम आँख फोड़ और गर्दन तोड़। मगर अब इन विभागों में भी यह कमी पूर्ण होती जा रही है। (2)
ये संपादकीय पढ़कर मुझे भारत की पहली महिला डॉक्टर आनंदी गोपाल शेवड़े का प्रसंग स्मरण हो आया, जिन्हें उनकी घोर अनिच्छा के बावजूद उनके पति ने पढ़ाया- बल्कि अत्याचार-वत् पढ़ाया। पर फिर जब वे डॉक्टर बन गयीं, उनमें अपनी एक सोच विकसित हुई, तो उन्हें तानों से छलनी भी कर दिया।
यह एक टिपिकल पुरुष-वृत्ति है । अनपढ़ स्त्री, जरूरतमंद स्त्री के उत्थान के हिमायती पुरुष प्रायः स्त्रियों की उस स्थिति को, उन

मन्तव्यों को नहीं सह सकते जो पुरुषों के बनाए क़ायदे- क़ानूनों, विचारों, आचारों की परिधि को तोड़ते हैं। सारी स्वतंत्रता, सुविधा, प्रगति पुरुषों की इच्छा तथा उनकी बनाई मर्यादा के भीतर हो। भारतीय स्त्री के समक्ष यह तथ्य गहरे से रेखांकित किया जा चुका है कि लक्ष्मण-रेखा को लांघने वालों का अस्तित्व अपहृत कर लिया जाता है(या कर लिया जाएगा)[15] क्या यह प्रेमचन्द के नारी-चिंतन की मर्यादा कही जाएगी ? या प्रेमचन्द के नारी-चिंतन का वास्तविक रूप सतह के भीतर है, जो ऐसे कुछ संपादकीयों में प्रकट विचारों से काफी भिन्न है, जिसे उनके समय के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए- यह मेरा प्रश्न है। मोटे तौर पर यह समझा गया है कि प्रेमचन्द के नारी चिंतन पर आर्य-समाज, गांधी जी तथा बाद में चलकर प्रगतिवाद का प्रभाव पड़ा। उनका नारी- दृष्टिकोण उस समय के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के बीच बन रहा था। एक तरफ़ उनके पुरोगामी भारतेन्दु( जिन्होंने स्वयं एक विधवा से विवाह किया था) तथा भारतेन्दु-मंडल के रचनाकार जो समाज-सुधारक की भूमिका में थे, साथ ही नवजागरण कालीन आर्य-समाज, ब्राम्हो समाज के प्रभाव के फलस्वरूप उभरा नारी जागृति का प्रवाह – फिर प्रेमचन्द के समकालीन गाँधी जैसा व्यक्तित्व का होना – साथ ही साथ वैश्विक स्तर पर चल रहे नारीवादी आंदोलन की गरमाहट उनके विचारों को प्रेरित कर रही थी, दिशा भी दे रही थी। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि उनके अपने जीवन तथा परिवेश में स्त्री की स्थिति, उपस्थिति तथा भूमिका ही वह वास्तविक मिट्टी है जिसमें उनके स्त्री-चिंतन का बीज रोपा गया। फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास( भारत में) नारी स्वतंत्रता का भी इतिहास है।(3)और यही प्रेमचन्द के नारी-चिंतन की भूमि है। प्रेमचन्द के नारी-चिन्तन तथा व्यवहार में यदा-कदाचित् दिखाई पड़ने वाली फांक की समीक्षा करने पर मालूम होगा कि उन्होंने अपने लिए छूट बहुत ली है। उनके जीवन के दो महत्वपूर्ण निर्णय इस संदर्भ में प्रश्न के घेरे में आ जाते हैं। प्रायः स्त्रियों के सामाजिक प्रश्न विवाह से जुड़े हुए होते हैं। अतः उनके अधिकार भी मुख्यतः इसी से संलग्न माने जा सकते हैं। प्रेंमचन्द का मानना था कि राष्ट्रीयता और सद् बुद्धि की जो लहर इस समय आई हुई है वह स्त्री-पुरुषों के तमाम भेदों को मिटा देगी। भारत की स्त्रियों के प्रति प्रेंमचन्द को पूरा विश्वास था। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रेमचन्द स्त्रियों के निर्णय लेने के अधिकार के हामी थे। स्त्रियों को ख़ुद तय करना चाहिए कि उन्हें क्या चाहिए। अपने व्यापक सामाजिक, पारिवारिक अनुभव के फलस्वरूप, उनका मानना था कि कुछ एक मुद्दों पर स्त्रियों में असंतोष है और इस असंतोष का शमन भी स्त्रियों की इच्छानुसार करना पड़ेगा। उनके अनुसार विवाह के नियम स्त्री तथा पुरुषों, दोनों पर समान रूप से लागू किए जाएं तथा पुरुष पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह न कर पाए। पुरुष की संपत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो वह या तो उसे( अपने हिस्से की संपत्ति को) रेहन पर रखे या व्यय करे।

इसमें जो पहली बात है उसका पालन तो प्रेमचन्द जी नहीं कर पाए। पहली पत्नी के होते उन्होंने शिवरानी देवी से विवाह किया था। इस संदर्भ में शिवरानी देवी ने अपनी पुस्तक में दो स्थानों पर उल्लेख किया है। चूंकि किताब में कोई समय-क्रम नहीं है अतः पहले उल्लेख(पृ 7) को बाद वाला एवं बाद वाले उल्लेख( पृ-25,26) को पहले वाला मानना चाहिए। बस्ती, 1914 में शिवरानी देवी ने उस प्रसंग को का उल्लेख किया है जब प्रेमचन्द की पूर्व-पत्नी के भाई उनसे मिलने आते हैं और अपनी बहन के दुखों का बयान करते हैं। यह संवाद शिवरानी देवी सुन लेती हैं। पूछने पर भी प्रेमचन्द बताते नहीं हैं । शिवरानी देवी के बदन का खून गरम हो रहा था (26)। इस मुद्दे पर दोनों में तीखी बहस हो जाती है। शिवरानी देवी लिखती हैं कि वही पहला दिन था जब मुझे मालूम हुआ कि वे अभी ज़िंदा हैं। मुझे तो धोखा दिया जाता रहा कि वे मर गई हैं(26)। शिवरानी देवी जब प्रेमचन्द से इस संदर्भ में जवाब-तलब करती हैं तब प्रेमचन्द का जवाब चौंकाने वाला और कम-से-कम लेखकोचित तो नहीं ही है, (फिर प्रेमचन्द जैसा लेखक) जिसको इन्सान समझे कि जीवित है, वही जीवित है। जिसे समझे मर गया, मर गया(26)। शिवरानी देवी का आग्रह था कि उन्हें भी साथ रहने बुला लिया जाए। प्रेमचन्द के मना करने पर शिवरानी देवी कहती हैं एक आदमी का जीवन मिट्टी में मिलाने का आपको क्या हक़ है । इस पर प्रेमचन्द का जवाब है-हक़ वगैरह की कोई बात नहीं है ।(4)

इसी संदर्भ में जब दूसरी बार बात होती है तब शिवरानी देवी कहती हैं एक की तो मिट्टी पलीद कर दी जिसकी कुरेदन मुझे हमेशा होती है। जिसको हम बुरा समझते हैं वह हमारे ही यहाँ हो और हमारे ही हाथों हो। मैं स्वयं तकलीफ़ सहने को तैयार हूँ, पर स्त्री जाति की तकलीफ़ मैं नहीं सह सकती। मेरे पिता को मालूम होता तो आपके साथ मेरी शादी हर्गिज न करते। फिर आगे वह कहती हैं कि अगर मेरा बस चलता तो मैं सब जगह ढिंढोरा पिटवाती कि कोई भी तुम्हारे साथ शादी न करे। (5) इस पूरे किस्से से जो बात उजागर होती है वह यह कि और कोई तो क्या इस बात के लिए प्रेमचन्द को लताड़ते, स्वयं शिवरानी देवी ने उनकी ख़बर ले डाली। (चाहें तो आप इसे एक अत्यन्त भोली-सी चालाकी भी कह सकते है कि किसी और को यह अवसर ही न मिले।) पर जहाँ तक प्रेमचन्द के विचार तथा व्यवहार के बीच की फांक का संबंध, उनके एकदम निजी जीवन के प्रसंग में घटित हुई है, इस बात को स्वीकारना तो पड़ेगा ही।

जहाँ तक दूसरी बात का प्रश्न है- पति के पैसों पर पत्नी के संपूर्ण अधिकार की, प्रेमचन्द उसमें खरे उतरे हैं। प्रेस खरीदने के प्रसंग में, प्रेमचन्द आखिरकार शिवरानी देवी की बात मान लेते हैं और भाई महताब से स्पष्ट कह देते हैं कि धुन्नु( श्रीपतराय) के नाम से प्रेस खरीदा जाएगा। भाइयों के बीच कड़वाहट आ जाने का संकट मोल ले कर भी वह ऐसा निर्णय लेते हैं। इस बात के संदर्भ में बहुत बाद में महताब की पत्नी ने भी अपना पक्ष रखा है पर इसे पारिवारिक राजनीति की खोल में चल रहे वैचारिक विरोध की राजनीति

मान कर फिलहाल उसे छोड़ दिया जा सकता है।(6)
पति की आय पर पत्नी का पूरा हक़ होना तो आज भी स्वप्नवत् ही है, क्योंकि आज भी स्थिति तो यही है कि पत्नी का अपनी कमाई पर भी पूरा हक़ नहीं होता। प्रेमचन्द पुत्र और पुत्री दोनों का पिता की संपत्ति पर पूरा अधिकार मानते थे। तलाक के वे पक्षधर थे और विवाह की भांति यह भी स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान हो, ऐसा उनका मानना था। तलाक के समय भी स्त्री का पति की संपत्ति पर आधा हक़ हो तथा मौरूसी जायदाद पर अंशतः हक़ हो।
जहाँ तक तलाक के अधिकार का प्रश्न है, 1931 में लिखे इस संपादकीय की बात को वे गोदान की मीनाक्षी में चित्रित करने की कोशिश करते हैं। राय साहब की पुत्री मीनाक्षी अपने पति की ऐयाशी से तंग आ कर तलाक ले लेती है। हिन्दी उपन्यासों में पहली बार तलाक का मसला गोदान में ही आता है। निर्मला की विधवा रुक्षमणि तक अभी वे इस हद तक प्रगतिशील नहीं हो पाए थे, संभवतः, पर यह भी हो सकता है कि उपन्यास की कथावस्तु की वह मांग हो। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि वास्तविक यथार्थ जीवन में वे विधवा जीवन की समस्या के प्रति अत्यन्त चिंतित थे। तभी हरि विलास शारदा कानून जब पार्लियामेंट में रखा गया तब का उनका संपादकीय पढ़ने जैसा है।

हंस जनवरी 1931 के संपादकीय हरि विलास शारदा का नया कानून शीर्षक से वे लिखते हैं कि विधवा को पति की जायदाद पर अधिकार हो। यह बिल 1933 में असेंबली में पेश किया गया। तब जागरण के संपादकीय में प्रेमचन्द ने लिखा है श्री हरि विलास शारदा ने अपनी सामाजिक सेवा से भारत के इतिहास में अमर पद प्राप्त कर लिया है। उन्हें कट्टर संप्रदाय के महानुभावों के प्रति संदेह था कि शायद वे इसका विरोध करें । प्रेमचन्द का मानना था कि पुरुष अगर संपत्ति का मनमाना उपयोग कर सकते हैं तो स्त्रियां क्यों नहीं। वे लिखते हैं इस समय हमारा सामाजिक धर्म यह है कि शास्त्रों और स्मृतियों की शरण लेकर इस बिल को रद्द करने की चेष्टा न करें । विधवाओं के साथ समाज ने बहुत अन्याय किया है और अन्याय को पाल कर कोई समाज सरसब्ज़ नहीं हो सकता। (7)

विधवाओं की दशा से वे इतने परेशान थे कि 17 जुलाई 1933 को जागरण के संपादकीय में वे एक ऐसी बाल-विधवा का हवाला देते हैं जो आत्म-हत्या के लिए प्रवृत्त हो गई थी। वह रेल की पटरी पर सो जाती है, परन्तु ड्राइवर की नज़र पड़ी और वह बचा ली गई। फिर उस विधवा पर आत्महत्या के अपराध में अभियोग चला। यानी विधवा को जीते जी भी सुख-चैन नहीं और न ही मरने की स्वतंत्रता।
कलम का सिपाही में अमृत राय लिखते हैं- कितनी ही विधवाएं और समाज की सतायी हुई स्त्रियां कोठे पर पहुँच जाती हैं। समाज यह सब अपनी आंखों के आगे होते हुए देखता है लेकिन तो भी उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। अपनी ज़िम्मेदारियों की तरफ से वह कितना बेखबर लेकिन बेकसों को सताने के लिए कितना शेर। करेगा-धरेगा कुछ नहीं लेकिन किसी से कोई गलती हो भर जाए, कच्चा ही चबा जाएगा। विधवाओं पर तो उसका विशेष कृपा है--- उस दुखियारी स्त्री की दूसरी बहनें ही उस पर चौकीदारी करती हैं और ग़रीब औरत अगर कहीं दुर्भाग्य से अपनी लीक से जौ भर भी डिग गयी तो फिर उसकी खैरियत नहीं। पहले तो वह औरतें ही उसे अपने तानों से छेद-छेद कर मार डालेंगी और अगर इतने से वह नहीं मरी तो फिर उसका और कुछ उपाय किया जाएगा। (8)

प्रेमचन्द ने 27 मार्च 1933 जागरण के संपादकीय में सर हरि सिंह गौड़ के तलाक कानून का समर्थन यह कह कर किया है ऐसे क़ानूनों का हमें स्वागत करना चाहिए जिनका उद्देश्य सामाजिक अत्याचारों को दूर करना है। क्यों कि उनके मत से सब से बड़ा कानून जन-मत है। (9)

यह देखने की बात है कि सन् 33 से ही, (संभवतः उसके कुछ पहले से भी) प्रेमचन्द जैसे रचनाकार जनमत यानी लोकतंत्र के समर्थन में लिखने लगे थे। न्याय- तंत्र की सामाजिक भूमिका को रेखांकित करने लगे थे। इसी संपादकीय में उनका कहना था विधवा विवाह का बिल पास हो जाने से सभी विधवाएं विवाह तो नहीं करने लगी थी। शारदा कानून ने भी तो बाल-विवाह नहीं बन्द कर दिए। हाँ, उन पर रोक अवश्य डाल दी।

इन संपादकीयों की भूमिका के रूप में यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रेमचन्द ने सन् 1906 में एक बाल-विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया था। शिवरानी देवी ने भी अपनी पुस्तक में जो हवाले दिए हैं, उनसे पता चलता है कि प्रेमचन्द शिवरानी देवी के साथ इन तमाम मुद्दों पर चर्चा किया करते थे और हमेशा शिवरानी देवी उनसे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं था। फिर, प्रेमचन्द का ऐसा आग्रह भी नहीं होता था।

ये कुछ ऐसे मुद्दे थे, जो, जहाँ उस युग में तो चर्चा के केन्द्र में थे ही, प्रेमचन्द की चिंता के भी केन्द्र में थे। प्रेमचन्द ने बार-बार अपने संपादकीयों में, रचनाओं में इनका उल्लेख किया है। इनके विषय में लिख कर, मध्य वर्ग की मानसिकता को बदलने का प्रयास किया है, ऐसा कहा जा सकता है। दिसंबर 1932 तक तलाक का बिल कानूनी रूप धारण नहीं कर सका था। पर इन सब गतिविधियों से भारतीय महिलाओं में एक नवीन जागृति अवश्य आ गई थी। इसी संदर्भ में हंस, दिसंबर 1932 का संपादकीय उल्लेखनीय है। यहाँ प्रेमचन्द ने इस बात की और इशारा किया है कि महिला विकास के मुद्दों पर दोनों क़ौमों की स्त्रियां एकमत हैं। अर्थात् दोनों विकास चाहती हैं। हिन्दू और मुस्लिम पुरुष भी इन मुद्दों पर एकमत हैं। लेकिन ज़ाहिर है, स्त्रियों और पुरुषों का इसमें एकमत नहीं है। इसमें एक बड़ा सूक्ष्म व्यंग्य भी निहित है- कि जहाँ तक महिला विकास का प्रश्न है पुरुष क़ौम वादी नहीं है।(यानी कि पुरुष-वर्ग स्त्री का विकास न होने में एकमत है) यह संपादकीय इस तरह है- भारतीय महिलाओं ने अपने कार्यक्रम से यह सिद्ध कर दिया है कि वे समाज के क्षेत्र में पुरुषों से कितना आगे निकल गई हैं। विशेष कर जिन बंधनों से पुरुषों ने उन्हें जकड़ रखा था और उन पर शासन करते थे उन बेड़ियों को तोड़ने के लिए वह बहुत विकल रही हैं। शारदा-बिल से मुसलमानों का एक बड़ी संख्या को तो आपत्ति है ही, हिन्दुओं में भी कुछ ऐसे पुरुष हैं, जो उनका विरोध करते हैं। पर स्त्रियों ने, जिन में मुसलमान स्त्रियां भी शामिल हैं , एक स्वर से इस बिल का स्वागत किया है। तलाक का बिल अभी कानून का रूप नहीं धारण कर सकता है और हिन्दू पुरुषों में भी इस समस्या पर मतभेद है, पर हिन्दू महिलाएं उस पर हर महिला-सम्मेलन में जोर देती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं ने अपने परिष्कृत सद् विचार का परिचय दिया है। वे सार्वजनिक निर्वाचन अधिकार चाहती हैं। जायदाद या शिक्षा की कोई क़ैद उन्हें पसंद नहीं है और राष्ट्रीय एकता का तो जितने ज़ोरों से स्त्रियों ने समर्थन किया है उस पर बहुमत से हिन्दू और मुसलमान पुरुषों को लज्जित होना पड़ेगा। जिन महानुभावों को हमारी देवियों की विचारशीलता पर संदेह था उन्हें अब अपने विचारों में तरमीम करनी पड़ेगी। भारतीय महिलाओं ने घर की चारदीवारी के अन्दर जिस तरह अपनी दक्षता प्रमाणित की है उसी तरह राष्ट्र के विस्तृत क्षेत्र में वे पुरुषों के आगे रहेंगी। (10) यहाँ इस बात पर ग़ौर करना चाहिए कि स्त्रियों की सोच के विषय में जो सामान्यतः परंपरागत संदेह का भाव विद्यमान है, उसे प्रेमचन्द तोड़ने की कोशिश करते हैं। एक तो स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता की स्थिति तथा दूसरा उनकी सोच(बुद्धि) पर संदेह करना, ये ही दो मुख्य बिन्दु हैं जिनके कारण उनकी दशा युगों से शोचनीय रही है। इन संपादकीयों में प्रेमचन्द की दृष्टि इस हद तक सजग और पैनी रही है कि वे परंपरागत दृष्टि को भी मानों परिवर्तित करने का प्रयास कर रहे थे। तभी मि. मैकेंज़ी के कुमारी शिक्षा के आदर्श पर उन्होंने तीखी टिप्पणी की है।

मैकेंज़ी कन्या- शिक्षा में वही भेद स्वीकार करते हैं जो समाज में वास्तविक रूप से विद्यमान है। पर इसमें भी प्रेमचन्द का पक्ष तो यही था कि स्त्रियों को ही फैसला करने का हक़ मिलना चाहिए। प्रेमचन्द के अनुसार पुरुषों ने स्त्रियों को इतना सताया है कि वे अब आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनना चाहती हैं। स्त्रियां अध्यापिका बनें या वकालत करें, इसका निर्णय वे ख़ुद करें। स्वार्थी पुरुषों का फ़ैसला उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिए।
प्रेमचन्द के इस संपादकीय की विशेषता यह है कि उन्होंने बड़ी सफ़ाई से मैकेंज़ी और भारतीय देवियों को आमने-सामने रख दिया है। यह जागरण, 22 जनवरी 1934 का संपादकीय है। 29 जनवरी 1934 के संपादकीय में उन्होंने महिलाओं की शिक्षा पर जवाहरलाल नेहरू के विचार रखे हैं। इसमें उन्होंने फिर मैकेंज़ी को याद करते हुए एक अच्छा जक्सटापोज़(juxtapose) खड़ा किया है। जहाँ मैकेंज़ी लड़कियों को केवल गृहिणी बनाना चाहते थे वहाँ महिला विद्यापीठ के दीक्षांत भाषण में नेहरू कहते हैं कि लड़कियों को केवल विवाह के लिए क्यों तैयार किया जाए. वे लड़कियों की आर्थिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे। महत्वपूर्ण बात पुरुषों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की है—इससे ही सारा विवाद मिट जाएगा और पारिवारिक विच्छेद के लज्जास्पद दृश्यों से समाज की रक्षा हो सकेगी।

इस जक्सटापोज़िशन से प्रेमचन्द ने यह भी स्पष्ट किया है कि अँग्रेज़ों में भी कुछ लोग, जो ऊंचे ओहदों पर थे, उनकी मानसिकता पिछड़ी हुई थी। हम चाहें पराधीन हों पर हमारे उम्मीद- भरे नेता प्रगतिशील अवश्य हैं। इसका महत्व इस दृष्टि से भी है कि उस समय की जनता ख़ुद ये देखे और निर्णय करे कि हक़ीक़त में कौन अगड़ा है और कौन पिछड़ा है। स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता संबंधी प्रेमचन्द का विचार भारतीय था- कहने का मतलब यह है कि वे स्त्रियों के आर्थिक स्वातंत्र्य के पक्षधर तो थे पर उनके नौकरी करने के पक्ष में नहीं थे। यह विरोधाभासी लग सकता है। पर शिवरानी देवी के साथ की उनकी बातचीत के हवाले से ऐसा कहा सकता है। शिवरानी देवी जब स्त्रियों की नौकरी की बात उठाती हैं, तो प्रेमचन्द का कहना था – स्त्रियां नौकरियां करने लगी हैं, मगर वह अच्छा नहीं है, मैं इसको अच्छा नहीं समझता। अब इसका नतीजा क्या हो रहा है अब पुरुष और स्त्री दोनों नौकरियां करने लगे हैं , तब इसके मानी क्या है. रुपये ज़्यादा आ जाएँगे। उसी का तो यह फल है कि पुरुषों की बेकारी बढ़ रही है। (11)

पहले पठन में प्रेमचन्द का यह कथन अत्यन्त प्रतिक्रियावादी लगता है। लेकिन चर्चा की समाप्ति पर उनका यह कथन उनकी

वास्तविक मानसिकता पर प्रकाश डालती है- छोटी जातियों और काश्तकारों में देख लो, दोनों बराबर की मेहनत करते हैं, बल्कि स्त्रियां उनसे कुछ अधिक ही काम करती हैं, फिर भी पुरुष जो बदमाश हैं, वह अपनी स्त्रियों से पैसा भी छीन लेते हैं, और उन पर शासन भी करते हैं। अब सोचना यह है कि कैसे दोनों को बराबर भी किया जाए और बदमाशों को कैसे ठीक किया जाए। इसमें ज़रूरत इस बात की है कि स्त्रियां शिक्षित हों, और उसके साथ-साथ स्त्रियों को वह अधिकार मिल जाएं, जो सब पुरुषों को मिले हुए हैं। जब तक स्त्रियां शिक्षित नहीं होंगी, और सब कानून- अधिकार उन को बराबर न मिल जाएंगे, तब तक महज़ बराबर काम करने से ही काम नहीं चलेगा। (12)

शिवरानी देवी के साथ का उनका यह संवाद सन् 1935 का है। इस बात पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि प्रेमचन्द आर्थिक स्वतंत्रता को शिक्षा और कानूनी अधिकार से जोड़ते हैं , नौकरी से नहीं। प्रेमचन्द के ये बदमाश पुरुष आज भी, केवल काश्तकारों में ही नहीं, मध्य-वर्ग में भी विद्यमान हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज स्त्री धनोपार्जन का बेहतर साधन हो गई है।

परिणाम

विधवा और तलाक, आर्थिक स्वतंत्रता के साथ ही प्रेमचन्द ने बालिकाओं के शिक्षित होने में विशेष रुचि दिखाई। वे मानते थे कि समाज का एक अंग दुर्बल होने के कारण ही हमारी इतनी हीन दशा है। प्रेमचन्द के इस संपादकीय को, जो हंस, दिसंबर 1932 में छपा है, पढ़कर मुझे यह प्रतीति हुई कि अब भी हमने बहुत विकास नहीं किया है। 2006 में भी गुजरात राज्य कन्या- शिक्षण को बाजे-गाजे के साथ महत्व दे रही है।( इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसकी आवश्यकता इस मायने में है भी कि आज भी अगर कन्या-शिक्षा पर पैसे खर्च करने पड़े तो असंख्य लड़कियां निरक्षर रह जाएंगी।)यानी इस संपादकीय के लिखे जाने के 74 वर्ष बाद भी कन्याओं को शिक्षित करने की मानसिकता समाज में अभी पूरी तरह से बनाना बाकी है। यह काम पूरा नहीं हुआ है। वे कहते हैं – पुराने ज़माने में क्षत्राणियां रण में शत्रु का सामना करती थीं। पर आजकल की लड़कियां अपने स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकतीं।

आर्य-कन्या व्यायाम मंदिर, बड़ौदा की कन्याएं गदा, लेझिम, फिरकी, तलवार, छुरे, आसन तथा अन्य व्यायाम के प्रदर्शन हेतु, स्थानीय दयानंद हाईस्कूल में आई थीं। सभी बालिकाएं जो आई थीं, अत्यन्त फुर्तीली, चपल, शिक्षित तथा दक्ष थीं। उनका गरबा नाच, संस्कृत में कथोपकथन, दो लड़कियों का व्याख्यान उनकी शिक्षा को व्यक्त करता था। बडौ़दा की कन्याओं का यह ग्रुप कन्या शिक्षा का प्रचार करने अपने प्राचार्य के साथ भारत भ्रमण के लिए निकला था। यह ध्यान देने की बात है कि प्रेमचन्द एक तरह से शिक्षा को अस्त्र मानते थे।

लेकिन यह बात सर्वविदित है कि प्रेमचन्द ने अपनी लड़की की पढ़ाई की तरफ़ बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया था। इसका कोई खुलासा शिवरानी देवी ने नहीं किया है। परन्तु अमृत राय ने अपनी पुस्तक कलम का सिपाही में लिखा है- मुंशीजी की बेटी के साथ भी यही बात थी। स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई का सुयोग उसे नहीं मिला—या नहीं दिया गया। कुछ रोज़ लखनऊ के महिला विद्यालय में गई मगर फिर वहाँ से भी उसे छुड़ा लिया गया। आजकल जहाँ अनपढ़ लड़कियों पर उंगलियाँ उठती हैं, चालीस-पैंतालीस साल पहले पढ़ी-लिखी लड़की पर उठा करती थीं। लड़की को पढ़ाना अपने आप में एक क्रांति थी। मुंशीजी भी शायद इस क्रांति के लिए तैयार नहीं थे।(13) अमृत राय बताते हैं कि प्रेमचन्द की बेटी जब छोटी थी तब वे बस्ती में रहते थे, जो एक छोटी जगह थी। जब बेटी कछ पढ़ने-लिखने लायक हुई तब उनका गोरखपुर का आबदाना छूट गया था। बाद में कहीं भी जमकर उनका रहना नहीं हो सका। फिर लड़की को बाहर भेज कर पढ़ाना संभव न था। (यहाँ इस बात को याद कर लेना चाहिए कि महादेवी जी ने लगभग सत्याग्रह कर के इलाहाबाद जा कर पढ़ने के लिए अपने माता-पिता को राज़ी किया था। ऐसा सब के लिए संभव नहीं होता।) कुछ इत्मीनान उनको लखनऊ में मिला। पर, अमृत राय लिखते है-बेटों की पढ़ाई, जो अपनी बहन से छोटे थे, वहीं शुरु हुई लेकिन बेटी की पढ़ाई शुरु करने के लिए तब तक ज़्यादा देर हो चुकी थी। आधे मन से कुछ कोशिश ज़रूर हुई, पर आधे मन से। क़िस्सा कोताह वह पढ़ नहीं सकी और चूल्हा पकड़े बैठी रही जो कि घर की सयानी लड़की का काम है। (14) अमृत राय तर्क भी देते हैं कि माँ की बीमारी के कारण भी, हो सकता ही कि उसे स्कूल न भेजा गया हो। बहर हाल, जो कारण रहा हो, यह बेहद अफ़सोस जनक ही कहा जाएगा कि स्त्री-शिक्षा के सघन समर्थक प्रेमचन्द स्वयं अपनी बेटी को न पढ़ा सके हों। ज़माने को लानत भेज कर भी यह बात तो बनी ही रहती है कि उनकी बेटी शिक्षा से वंचित रही। लेकिन बड़े भोलेपन से और सहज-भाव से दिया गया अमृत राय का यह कारण हमें सोचने पर मजबूर करता है- इन सब के बाद भी यह मानना कठिन है कि बेटी को ठीक से शिक्षा का सुयोग न देने के पीछे और भी कोई कारण नहीं था । जहाँ तक प्रमाण मिलता है—जिसमें उनकी इसी काल की लिखी हुई शान्ति—जैसी कहानियों का प्रमाण भी है—उसका बड़ा कारण यह था कि पढ़ी-लिखी लड़कियों की तरफ़ से उनके मन में यह चोर था कि लड़कियाँ पढ़-लिख कर गृहस्थी के काम की नहीं रह जातीं, तित्तली बन कर यहाँ-वहाँ घूमते रहने में ही उनका जी लगता है। अगर इससे अलग भी कोई बात उनके मन में थी तो वह कमज़ोर

थी और चारों तरफ़ एक पिछड़ा हुआ समाज था जो लड़कियों की पढ़ाई को अच्छी निगाह से नहीं देखता था। लिहाज़ा बेटी घर के भीतर और घर के बाहर समाज के पिछड़ेपन का शिकार हुई और मामूली हिन्दी से ज़्यादा कुछ न पढ़ सकी। (15) क्या इसीलिए गोदान की मालती को भी लेखक के इन विचारों का खामियाजा भुगतना पड़ा है ? या फिर गोदान की मालती औपन्यासिक कथावस्तु की अनिवार्यता है ? यह प्रश्न भी उठता है। किन्तु साथ ही यह तथ्य भी सामने रखना आवश्यक है कि शिवरानी देवी ने जो प्रेमचन्द का चरित्र उकेरा है उससे यह मान लेना ज़रा कठिन प्रतीत होता कि वे स्त्रियों के बारे में ऐसी सोच रखते हों। अमृत राय के ऐसे विश्लेषण के क्या कारण हो सकते हैं, कहा नहीं जा सकता।

यहाँ मैं एक और बात भी रखना चाहूंगी। एक ऊर्जा सभर रचनाकार जब रचना करता है तब वह जो भी कुछ कहता है या कहना चाहता है, अपनी रचना में इस तरह डूब कर कहता है कि उसे एक अ-भूतपूर्व रचनात्मक संतोष की प्राप्ति हो जाती है। मानों उसने वह कार्य वास्तव में संपन्न कर लिया हो। क्रिएटिव सैटिसफैक्शन(सर्जनात्मक संतोष) मिल जाने के पश्चात् कई बार यह बात उसके लिए गौण हो जाती है कि उसने अपने वास्तविक जीवन में उसका पालन किया है या नहीं, कर पाया है या नहीं, या उससे हो पाया है या नहीं। इसे हर बार रचनाकार के जीवन तथा कृतित्व के बीच फांक के रूप में देखना आवश्यक नहीं है। यह हक़ीक़त है कि एक रचनाकार अपने विशिष्ट भौतिक परिवेश में जीता है और तदनुसार उसकी सर्जनात्मक चिंताएं आकार ग्रहण करती हैं। वह अपनी रचनाओं के द्वारा मंगलमय जीवन एवं समाज के बेहतर भविष्य का स्वप्न देखता है। अतः उसकी रचनाएँ उसके समय तथा देश के परे और पार जा कर भी मनुष्य जीवन को प्रभावित करती हैं तथा सदैव करती रहेंगी। फलस्वरूप वह जो कुछ भी रचता है केवल अपने देश- काल में बद्ध हो कर नहीं लिखता। एक बिंदु पर उसकी चिंताएं सामयिक लग सकती हैं, होती भी हैं, परंतु एक अन्य बिंदु पर वह सामाजिक, भावनात्मक तथा सौंदर्यात्मक स्तर पर कालातीत भी होती हैं। यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि लेखक किस रचना में अनुभव के कौन से बिंदु पर अपने आप को पाता है। किस बिंदु पर खड़े हो कर वह सामयिक बात कर रहा है और कब वह कालातीत स्थिति में है। मुख़्तसर, मुद्दा इतना ही है कि लेखक जो भी लिखता है उसे हर बार एक ही मापदंड से नहीं देखना चाहिए। यहाँ मैं प्रेमचंद के बचाव में यह नहीं कह रही बल्कि मेरा आशय केवल यह रेखांकित करना है कि प्रेमचंद चाहे अपनी बेटी को न पढ़ा पाए हों परन्तु वे एक पराधीन राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक मानते थे कि उसकी नई स्त्री पीढ़ी शिक्षित हो। इसी तरह एक और स्थान पर, जहाँ अमृत राय ने प्रेस खरीदने के प्रसंग का उल्लेख किया है वे प्रेमचन्द का पत्र उद्भृत करते हैं, जिसमें इन वाक्यों को देखा जा सकता है- एक और बात याद रखो । तुम्हारा दिल, मैं जानता हूँ, बहुत साफ़ है। लेकिन औरतों का दिल अकसर तंग-खयाल होता है। (16) हालांकि स्वयं शिवरानी देवी इस बात से सहमत नहीं थी कि प्रेस में प्रेमचन्द के सौतेले भाई महताब का भी नाम हो, वे अपने बेटे श्रीपत के नाम खरीदना चाहती थीं। परन्तु प्रेमचन्द महताब को लिखते हैं- तुम्हारी बीबी के ग़ालिबन मालूम हो कि तुम रुपया कर्ज़ ले रहे हो महज़ इसलिए कि श्रीपतराय के नाम प्रेस ख़रीदो तो वह इसे हरगिज़ पसंद न करेगी। (17) प्रेमचन्द के इन विचारों को एक घरेलू औरत के विषय में, व्यवहारिक रास्ता निकालने के लिए, रखे गए उनके विचार मानने चाहिए; यह बात एक पारिवारिक मसला सुलझाने की तरकीब से अधिक कुछ नहीं। इसे प्रेमचन्द के नारी- विषयक केन्द्रीय विचार नहीं मानने चाहिए। हाँ, ऐसे प्रसंगों के उल्लेख से प्रेमचन्द की प्रगतिशील, आदर्शवादी तस्वीर कुछ धुँधली अवश्य होती है। ऐसे उदाहरणों से जो फांक जैसी दिखाई पड़ती है, उसे निश्चय ही इस रूप में लेना चाहिए कि वे अपने युग की वैचारिक सीमा को लांघ नहीं सके, संभवतः।

बालिकाओं को क्या नहीं पढ़ाना चाहिए तथा क्या उन्हें यौन-शिक्षण देना चाहिए या नहीं , इस मंतव्य का उनका संपादकीय महिला विद्यालय में बिहारी- सतसई (18)में झलकता है। इंग्लैंड में उस समय यौन-शिक्षण की चर्चा चल रही होगी। प्रेमचन्द व्यंग्य करते हैं कि बिहारी जैसे श्रृंगारी कवि को वहाँ स्थान मिलना चाहिए। इससे यही कयास निकाला जा सकता है कि वे इस बात के पक्ष में नहीं थे।

औरतों की खरीद-फ़रोख़्त (Women Trafficking) पर लिखा उनका सम्पादकीय वेश्यावृत्ति (19) राजनीतिक दलबन्दी बनाम सामाजिक प्रश्न जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर इशारा करता है। मि. ई अहमद शाह जो सामान्य रूप से प्रजापक्ष के विरोधी थे, उन्होंने वेश्या वृत्ति निवारण तथा स्त्रियों की ख़रीद-बिक्री रोकने का बिल पेश किया। राष्ट्र-परिषद ने भी ट्रैफ़िक इन विमेन संबंधी नियम बनाए थे। मात्र मि. चिंतामणि इस बिल का विरोध कर रहे थे। यह प्रेमचन्द के लिए आश्चर्यजनक बात थी। श्री. चिंतामणि ने मि. शाह की खिल्ली भी उड़ाई। पर प्रेमचन्द इसे दलबंदी की राजनीति का फल मानते थे। इसका मतलब तो यह है कि प्रेमचन्द के समय से ही महिलाओं के मुद्दे दलबंदी की राजनीति में फँसते रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आज भी 33% का बिल भी दलबंदी का शिकार हो रहा है।

प्रेमचन्द के लिए स्त्रियों से जुड़े मुद्दे महत्वपूर्ण थे, राजनीतिक दल नहीं। मसला चाहे प्रजापक्ष के समर्थक व्यक्ति का हो, परन्तु अगर उनके द्वारा स्त्रियों के अहित में लिया गया कोई निर्णय हुआ हो , तो प्रेमचन्द इस पर टिप्पणी करने से नहीं चूके। जन-संचार में महिलाओं को जिस तरह प्रस्तुत किया जाता है, उसकी अपमानजनक स्थिति का जैसा आलेखन होता है, उसको

लेकर आज काफी विरोध, आंदोलन, चर्चा आदि होती है। प्रेमचन्द ने भी अपने संपादकीय में नारी की अर्ध नग्न तस्वीरों के प्रदर्शन पर विरोध प्रकट किया है। बेशक इसका कारण वे पुरुषों के मनोभावों के उत्तेजन के साथ जोड़ते हैं, अर्थात् पुरुष उत्तेजित होता है, अतः ऐसा नहीं करना चाहिए। आज के नारीवादी दृष्टिकोण में यह बात फिट न भी बैठे। परन्तु वास्तविकता भी तो यही है। दक्षिण अफ्रीका में एक काली औरत पर गोरी औरत की नकल में पाजामा पहनने पर अदालती कार्यवाही हुई। इस पर हंस( मई, 1934) के अपने संपादकीय में प्रेमचन्द एक ओर जहाँ भेद-नीति पर टिप्पणी करते हैं, वहीं यह कहने से भी नहीं चूकते कि हमें तो उस काली देवी की कुरुचि पर दया आती है, जो साड़ी ऐसे लोचदार चीज़ को छोड़ कर पाजामा पहनने चली।(20) यहाँ यह देखा जा सकता है कि महिलाओं के वस्त्र पहनने की स्वतंत्रता के वे पक्षधर नहीं दिखते। यहाँ उनकी मानसिकता कुछ-कुछ संकीर्ण और रूढ़िवादी भी कही जा सकती है। यहाँ प्रेमचन्द तवज्जोह देते हैं अपनी रुचि तथा मान्यता को, जो वस्त्र पहनने के नारी के मूलभूत अधिकारों के विपरीत जा पड़ती है। फिर इस बात का मीज़ान भी नहीं बैठता कि स्त्री को यह अधिकार तो वह देते हैं कि वह अपना भविष्य तय करे- वकालत करे या अध्यापिका बने, पर वह क्या पहने बल्कि क्या न पहने, यह तय करने का अधिकार पुरुष का हो।

मेरा ऐसा ख़्याल है कि प्रेमचन्द में सर्वत्र यह बात देखने को मिलती है कि स्त्रियों के प्राथमिक मुद्दों पर वे जितने प्रगतिशील हैं, व्यावहारिक मुद्दों पर वे टिपिकली परंपरागत नज़र आते हैं।

समान मजदूरी के हिमायती प्रेमचन्द अविवाहित स्त्री के संतानवती होने के भी पक्षधर दिखते हैं। उनका नारियों से नम्र निवेदन है कि अब वे एकांत भोग की बात छोड़ें और अपने बेकार पुरुषों की उसी तरह नाज़ बरदारी करें जैसे पुरुष अब तक अपनी बेकार स्त्रियों की करता आ रहा है। (21)

बदलते हुए समय का अहसास प्रेमचन्द को हमेशा रहा है। नारियां अपने को मिलने वाली रियायतों को शीघ्र ही ठुकरा देने वाली हैं, ऐसा उन्हें विश्वास था। पुरुषों की chivalry(स्त्री-दाक्षिण्य) पर व्यंग्य कसते हुए वे कहते हैं कि पुरुषों द्वारा ठोस बातों तथा मुद्दों पर chivalry नदारद है जैसे- मजदूरी, पर कविताएँ छापना हों तो स्त्रियों की पहले छापेंगे। प्रेमचन्द की दृष्टि में यह स्त्रियों के साथ अन्याय है। स्त्रियों की कविताएँ उनकी गुणवत्ता के कारण नहीं पर, आज की भाषा में कहें तो, आरक्षण के कारण छापी जाएं, जिसके परिणामस्वरूप युवक स्त्रियों के नाम से कविताएँ भेजने को प्रवृत्त होने लगे। भारतीय नारियों के प्रति प्रेमचन्द को इतना तो भरोसा था कि वे शीघ्र ही इस संरक्षण को ठुकरा देंगी।

महिलाओं के द्वारा लिखित रचनाओं की समीक्षा करते समय भी प्रेमचन्द का नारी संबंधी दृष्टिकोण उजागर होता है। वचन का मोल की लेखिका के नाम, 9 जून 1936 में प्रेमचन्द लिखते हैं-आजकल युवक गल्प लेखक स्त्रियों को ख़ुश करने के लिए ख़्वामख़्वाह ऐसे नारी चित्र खींचते हैं जिन में विद्रोह की भावना भरी होती है। ज़रा-ज़रा-सी बात पर नारी अपने पुरुष से लड़ने के लिए तैयार हो जाती है या उसे छोड़ देती है, बदला लेने लगती है। एक स्त्री अपने पुरुष से इसलिए असंतुष्ट थी कि वह बेचारा दिन-भर काम-धंधे में फंसा रहता था और स्त्री के पास बैठ कर उसका मन बहलाने के लिए समय न था। देवीजी को अकेले बैठने में बुरा लगता था। आखिरकार अपने ममेरे देवर के प्रेम में फंस कर मर गई। इस तरह की कहानियों से क्या फायदा होता है यह मेरी समझ में नहीं आता। केवल यही कि स्त्रियां लेखक को स्त्रियों का हिमायती समझें। ईश्वर की दया से देवियां इतनी असहिष्णु नहीं होतीं। (22) अर्थात् प्रेमचन्द दिखावे के या देखा-देखी के नारी-वाद के समर्थक नहीं थे।

प्रेमचन्द ने किन्हीं हज़रत जामी साहब की युसुफ़ – ज़ुलेख़ा के किस्से पर जो टिप्पणी की है वह बड़ी मार्मिक है। पहले तो पूरा किस्सा कह सुनाया। फिर अंत में इतना भर कहा-इससे हज़रत जामी साहब का शायद यह मतलब होगा कि उसकी(ज़ुलेख़ा) कमियां दिखा कर, उसकी निंदा कर के यूसुफ़ की बड़ाइयों की इज़्ज़त बढ़ाएं और इस इरादे में वह ज़रूर कामयाब हुए हैं। (23) इसे प्रेमचन्द का फ़िरक़ापरस्तों के बारे में नज़रिया भी मान सकते हैं। कलम का सिपाही में भी अमृत राय ने भी प्रेमचन्द की उस पीड़ा को, क्रोध को व्यक्त किया है जहाँ वे पंडों तथा महन्तों द्वारा सुंदर रमणियों के साथ की जाती लीलाओं का हवाला देते हैं।(24) कलम का सिपाही तथा प्रेमचन्द घर में इन दोनों किताबों में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न पहलू नज़र आते हैं। शिवरानी देवी की किताब पढ़ कर दो बातें ध्यान में आती हैं –पहली - प्रेमचन्द का जीवन अधिकतर आर्थिक एवं शारीरिक संघर्षों में बीता और दूसरी - उनका अपनी पत्नी के साथ सभी मुद्दों पर चर्चा-वार्तालाप रहता था। अमृत राय की पुस्तक में कई बातें हैं परन्तु एक बड़ी महत्वपूर्ण बात जो उन्होंने लिखी है वह यह कि प्रेमचन्द की सर्जनात्मक अनिवार्यता को संभव बनाने के लिए दो ही मुद्दे कारण भूत थे- जाति-प्रथा तथा नारी की स्थिति। पिछले बरसों में उसने न जाने कितना कुछ पढ़ा था लेकिन उसमें ज्यादातर राज-रानी के किस्से

थे, तिलिस्म और ऐयारी के किस्से थे। पढ़ने में वह बहुत अच्छे लगते थे मगर वह कुछ और लिखना चाहता था। उस तरह के किस्से फिर से लिख कर क्या होगा। ठीक है उनसे दिल बहलाव होता है मगर सवाल यह है कि हम आखिर कब तक दिलबहलाव करते रहेंगे। इस तरह तो इतिहास के पन्नों से हमारा नाम मिट जाएगा। ज़रा अपने समाज की हालत भी तो देखो--- कैसी मुर्दे की नींद सो रहा है। उसका दिल बहलाने की ज़रूरत है कि झकझोर कर उसे जगाने की। न जाने कब से सो रहा है इसी तरह । क्या क़यामत तक सोता रहेगा। यह तो मौत है सरासर। अगर कुछ लिखना ही है तो ऐसा कुछ लिखो जिससे यह मौत और ग़फ़लत की नींद टूटे, यह मुर्दनी कुछ दूर हो।(25) उनकी दृष्टि में इस मुर्दनी के दो मुख्य कारण थे। पहला- एक आदमी के छू जाने से दूसरे आदमी की जात चली जाती है और दूसरा- कहने को तो कह दिया—जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं। लेकिन कोई पूछे कि आपने किसी तरह का कोई अधिकार नारियों को दिया है। .....वह एक खेत है जिससे सन्तान की, पुरुष के संपत्ति के उत्तराधिकारी की प्राप्ति होती है।(44) इसीलिए तो कन्या और गौ का स्थान एक है –चाहे जिसके साथ बाँध दो। पाँच साल की लड़की का ब्याह पचास साल के बुड्ढे के साथ हो सकता है।(26)
इस संदर्भ में प्रेमचन्द की एक कहानी याद आती है। 'नरक का मार्ग` जो १९२५ में 'चांद` पत्रिका में छपी थी। प्रेमचन्द ने उसमें कहा है कि 'स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दुख बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती है तो अपने यौवन काल की उमँगों का कुचला जाना।` इस कहानी में स्थिति थोड़ी-सी अलग है। यहां लड़की के माता पिता धन के लोभ में लड़की का बेमेल विवाह कर देते हैं। बूढ़े पति को पाकर भी लड़की सोचती है कि वह पति की सेवा करेगी क्योंकि यह उसका धर्म है। ससुराल में एकदम उलटा माहौल पाकर स्त्री बौखला जाती है। पति उसके स्वाभाविक बनाव शृंगार पर सशंकित और ईर्ष्या दग्ध रहता है। स्त्री जल्दी ही अपनी स्थिति समझ जाती है और कहती है कि 'इन्हें स्त्री के बिना घर सूना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देख कर पिंजरा सूना लगता है।` महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रेमचन्द की स्त्रियों अपनी स्थिति का विश्लेषण बखूबी करती हैं। गुलाम जिस दिन गुलामी का एहसास कर ले, उसकी लड़ाई उसी दिन शुरू हो जाती है। 'नरक का मार्ग` कहानी में प्रेमचन्द् की स्त्री दो हाथ आगे निकल कर कहती है ''मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती... यह कारावास ही है। 'मैं इतनी उदार नहीं हूं कि जिसने मुझे कैद में डाल रखा हो उसकी पूजा करुँ, जो मुझे लात मारे उसके पैरों को चूमूं।... स्त्री किसी के गले बांध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती है । विवाह का पद वह पा सकता है जिसमें कम से कम एक बार तो हृदय प्रेम से पुलकित हो जाये।`प्रेमचन्द यहां उस विवाह की बात कर रहे हैं जहां दो लोगों के मन पहले मिलते हैं। (27)
कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द का नारी-विमर्श जब उनकी पत्रकारिता में प्रकट होता है तब भी वह उनकी सर्जनात्मक ऊर्जा एवं चिन्तन-सभरता से स्पर्धा करता हुआ ही दिखाई पड़ता है। उसका अपना एक भारतीय रूप है जो ऊपरी स्वतंत्रता की अपेक्षा मूलभूत एवं प्राथमिक स्वतंत्रता को महत्व देता है। पर जहाँ तक स्त्री-विमर्श का मुद्दा है, अपने व्यक्तिगत जीवन में वह अपने विचारों के पीछे, कई बार दूर बैठे भी दिखाई पड़ते हैं।

## निष्कर्ष

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में नारी के कई रूपों को दिखाया । भूतकाल और वर्तमान काल की मुश्किल परिस्थियों के साथ-साथ उन्होंने भविष्य को भी काफी आगे तक देखा है। उनके नारी पात्र स्त्री विमर्श का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत कर करते हैं। उनके युग में नारी कई अधिकारों से वंचित थी। ये वो दौर था जब शारिरिक , सुंदरता,निर्बलता और उनके दैविय गुणों का महिमा मंडन कर स्त्री को घर के अंदर कैद कर दिया गया। परिवार पर पुरुषों ने अपना वर्चस्व क़ायम रखा। स्त्रियों को परावलंबी और मूकदर्शिका बना दिया। ऐसे में उनकी स्थिति गिरते-गिरते ग़ुलाम जैसी हो गई। आर्थिक निर्भरता ने उनसे पारिवारिक निर्णय लेने का अधिकार छीन लिया। जहां देवी पूजिता होनी चाहिए थी वहां नारी शोषित , अपमानित बना दी गई। इस स्थिति को सुधारने के लिए प्रेमचंद ने साहित्य का सहारा लिया। प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री विमर्श की स्थिति काफी मज़बूत है। युग द्रष्टा और युग स्रष्टा प्रेमचंद ने स्त्री को पुरूष से ऊपर माना है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र महज़ कल्पना नहीं है बल्कि तात्कालिन युग की जीती-जागती तस्वीर है। उनके उपन्यासों की नारी पात्रों ने बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा आदि कई समस्याओं को झेला है, जीया है, विरोध में स्वर मुखर किए हैं। अनमेल विवाह में स्त्रियों का अपमानित होना, नौकरानियों से निम्नतर व्यवहार यहां तक की समाज में बेटियां बोझ मानी गई ।इन सब कुरुतियों को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में दिखाया है। इन कुरूतियों को दूर करने के लिए उन्हे नारी का आत्मनिर्भर होना स्वीकार है। उनके उपन्यासों में महिला पात्र, माता , विधवा , प्रेमिका, परिणीता, मेहनतकश, समाजसेविका जैसे कई रूपों में अमिट छाप छोड़ती है।[27]

## प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1- प्रेमचन्द रचनावली -8 1933 का सम्पादकीय
2- रचनावली -9 पृ-78
3- डॉ. चंद्रेश्वर कर्ण – चिट्ठी- पत्री से झाँकती प्रेमचन्द की आलोचना दृष्टि- चक्रवाक पृ- 196
4- प्रेमचन्द घर में पृ-26

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

5- वही पृ- 8
6- चक्रवाक पृ-
7-रचनावली भाग- 8 पृ-448
8- पृ 45
9-रचनावली -8 पृ- 273
10-रचनावली -8 पृ- 198
11-प्रेमचन्द घर में पृ-192
12- वही- पृ-192-193
13- कलम का सिपाही पृ- 433
14-वही- पृ- 434
15- वही-पृ 434
16-कलम का सिपाही पृ- 242
17-प्रेमचन्द- घर में पृ 45-46
18-4,सितंबर 1933,जागरण, रचनावली-8 पृ 425
19-जागरण 3 जुलाई 1933
20-रचनावली-भाग-9 पृ-106
21-वही पृ-106 हंस, मई 1934
22-वही पृ- 525
23-रचनावली भाग-7 पृ-101
24-कलम का सिपाही पृ- 44
25- कलम का सिपाही पृ43-44
26- वही
27-http://www.tadbhav.com/2005/priti_chaudhary/
http://www.bbc.co.uk/hindi/entertainment/story/2005/07/050729_premchand_mahadevi.shtml

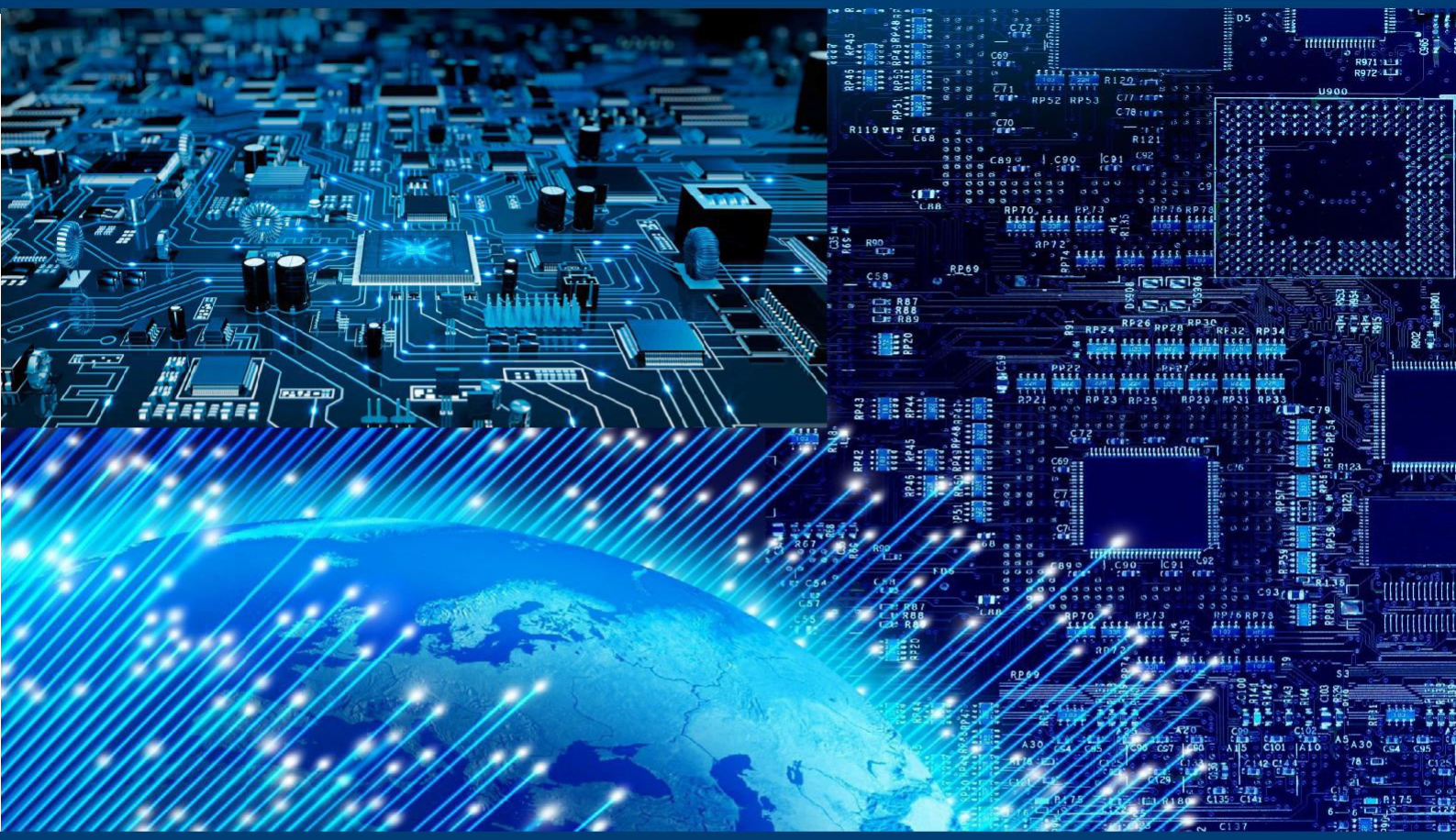


# International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)



| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |